दैनिक भास्कर

Date:16-09-21

कुपोषण भावी भारत के लिए खतरनाक संकेत

ईट-लैंसेट की ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार भारत में पौष्टिक और समुचित भोजन की उपलब्धता के लिए लोगों, खासकर गरीबों को तीन गुना खर्च करना पड़ेगा। उधर डेढ़ साल में कोरोना-काल के बाद दुनिया में पौष्टिक भोजन की खपत कम हुई है, लिहाज़ा यूएनओ खाद्य सिस्टम बेहतरी अभियान शुरू करने पर 23 सितंबर को सदस्यों से चर्चा करेगा। विगत दिसंबर आई नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-5 (2019-20) के प्रथम चरण की रिपोर्ट के अनुसार सर्वे-4 (2015-16) के मुकाबले देश के 22 में से 18 राज्यों में बच्चों के कुपोषण-जनित नाटेपन, दुर्बलता और कम वजन का प्रतिशत बढ़ा है। डब्ल्यूएचओ के अनुसार ऐसे बच्चे मानसिक, शारीरिक व बौद्धिक रूप से भावी जीवन में कमजोर होते हैं। सर्वे के अनुसार कुपोषण से हर साल 4% जीडीपी का नुकसान होता है। उधर ऐसे बच्चे भविष्य में स्वस्थ बच्चों के मुकाबले 20% कम आर्थिक आय कर पाते हैं क्योंकि उनकी उत्पादकता कम होती है। जो राज्य वर्षों से कुपोषण से छुटकारे में बेहतर प्रदर्शन कर रहे थे वे भी पिछले 4 सालों (2015-19) में कई पैमानों पर नीचे गिर गए। इनमें सबसे चौंकाने वाले राज्य हैं गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा, हिमाचल प्रदेश और केरल। ये सभी प्रति व्यक्ति आय, औद्योगीकरण या अच्छे स्वास्थ्य इंफ्रास्ट्रक्चर में बेहतर माने जाते रहे हैं। बिहार इस काल में कुछ बेहतर प्रदर्शन करते हुए 48.3% से घटकर 42.9% पर आकर नीचे से दूसरे पायदान पर आ गया है। देश का हर तीसरा बच्चा इन तीनों कुपोषण-जनित अक्षमता का शिकार बना हुआ है। चिंताजनक है कि इस साल के बजट में पोषण पर खर्च 3700 करोड़ रु. से घटाकर 2700 करोड़ कर दिया गया। नई पोषण-2 समेकित योजना का भी बजट पहले से कम है। इसे बदलना होगा।

Date:16-09-21

कमजोर पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए ऑनलाइन शिक्षा मिथक ही है

ऑनलाइन पढ़ाई में स्मार्टफोन की कमी, इंटरनेट पर खर्च जैसी कई बाधाएं हैं

रीतिका खेड़ा, अर्थशास्त्री , दिल्ली आईआईटी में पढ़ाती हैं

कुछ राग ऐसे होते हैं, जिन्हें बार-बार अलापना सही है। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जिंदगी में शिक्षा की अहमियत, शिक्षा के लिए साक्षरता की अहमियत, ऐसे ही रागों में से एक है। लॉकडाउन में स्कूल बंद हुए और प्राथमिक कक्षाएं तब से लगभग बंद हैं। कहा जा रहा है कि ऑनलाइन शिक्षा क्लासरूम पढ़ाई की जगह पर कारगर हुई है। लेकिन सर्वे पर आधारित रिपोर्ट, 'तालीम पर ताला' में कुछ और पाया गया। अगस्त में हुए सर्वे में 1362 बच्चे और मां-बाप शामिल थे।

ग्रामीण क्षेत्र में आधे और शहरी में एक चौथाई घरों में एक भी स्मार्टफोन उपलब्ध नहीं था। जहां फोन उपलब्ध भी है, कई बार वह मां या पिता के पास होता है। ऐसी में बच्चे की पढ़ाई के समय फ़ोन नहीं होता। जब घर में एक से ज्यादा पढ़ने वाले बच्चे हैं, लेकिन सभी बच्चों के बीच एक ही फोन है, वहां भी ऑनलाइन पढ़ाई में बच्चों को दिक्कत आ रही है। ऐसी स्थिति में बड़े बच्चे को प्राथमिकता मिलती है, छोटा छूट जाता है। बच्ची से ज्यादा बच्चे द्वारा स्मार्टफोन उपयोग करने की संभावना रहती है।

चूंकि बच्चों के जीवन की चिंता है, कुछ गरीब अभिभावकों ने कर्ज लेकर बच्चे की पढ़ाई के लिए स्मार्टफोन खरीदे हैं। स्मार्टफोन होना पहला पड़ाव है। इसके बाद परिवार के पास फोन रीचार्ज के लिए पर्याप्त पैसे होना भी जरूरी है। लॉकडाउन से इन परिवारों में आर्थिक दिक्कतें बढ़ी हैं और बीच-बीच में बच्चों की पढ़ाई इस वजह से भी छूट जाती है।

ऑनलाइन पढ़ने वाले लगभग दो-तिहाई (57% शहरी और 65% ग्रामीण) बच्चे ऐसे भी हैं जिनके लिए नेटवर्क बड़ी समस्या है। कहीं-कहीं तो उन्हें पहाड़ चढ़कर नेटवर्क मिला और कुछ समय बाद उन्हें पहाड़ से उतरना पड़ता है ताकि फोन चार्ज कर सकें। कहीं पर इन दिक्कतों के चलते, स्कूली बच्चे या बच्ची को किसी रिश्तेदार के घर रहने भेज दिया गया ताकि पढ़ाई में बाधा ना आए।

नियमित रूप से या फिर कभी-कभी पढ़ने वाले बच्चों में केवल 8-25% ऐसे थे जो ऑनलाइन क्लास या वीडियो से पढ़ रहे थे। ग्रामीण क्षेत्रों में, उन परिवारों में जहां स्मार्टफोन उपलब्ध है, 43% उत्तरदाताओं ने कहा कि स्कूल से कुछ भी पढ़ाई की सामग्री नहीं भेजी जा रही इसलिए वे नियमित रूप से पढ़ाई नहीं कर पा रहे।

जब ऑनलाइन शिक्षा हो रही है, तब घर पर मदद की जरूरत ज्यादा है, लेकिन कई बच्चों के मां-बाप खास पढ़े-लिखे नहीं हैं। कई परिवार ऐसे थे, जहां बच्चे को या मां-बाप को स्मार्टफोन के सही उपयोग में दिक्कत आ रही थी। जिनके अभिभावक पढ़े-लिखे हैं भी, वे अभी बच्चों की मदद नहीं कर पा रहे क्योंकि उन्हें कमाई के लिए दिनभर बाहर रहना पड़ता है। उनके सामने सवाल है: पेट भरने के लिए कमाई करें या बच्चों की शिक्षा पर ध्यान दें?

पढ़ाई के लिए अनुशासन अहम है। अनुशासन के लिए रुचि ज़रूरी है। जब ऑनलाइन शिक्षा चल रही हो, जहां आधा-अधूरा समझ में आ रहा हो, तब रुचि और अनुशासन, ख़ासकर छोटे बच्चों के लिए, कायम रखना बहुत कठिन हैं। बच्चों

ने बताया कि जब ऑनलाइन क्लास हो रही है, तब भी उन्हें क्लासरूम की याद इसलिए आ रही है क्योंकि ऑनलाइन में वे सवाल नहीं पूछ पाते, संकोच कर जाते हैं। आसपास शोर होने की वजह से ध्यानपूर्वक पढ़ना मुश्किल है। ऑनलाइन पढ़ाई के नाम पर कहीं वॉट्सएप ग्रुप में कुछ चित्र या फाइल भेज दी जाती हैं। चित्र/फाइल में लिखावट स्पष्ट नहीं दिखती। कहीं वॉट्सएप ग्रुप में मैसेज आ जाता है कि कछुआ और खरगोश की कहानी पढ़ो। बस। काफ़ी बच्चों ने बताया कि वर्कशीट या होमवर्क के नाम पर वे सिर्फ़ भेजी गई लाइनें पुस्तक से कॉपी करते हैं। क्या लिखा है, कुछ खास समझ नहीं है। पहली कक्षा में नामांकित बच्चे को होमवर्क दे दिया गया हालांकि वह एक भी दिन स्कूल नहीं गया और न ही उसे किसी ने लिखना सिखाया। शिक्षक ने मां से कहा कि छोटे बच्चे का होमवर्क बड़े बच्चे से कॉपी करवाकर जमा कर दें। मा-बाप को चिंता है कि बच्चों को फोन की लत न लग जाए। कुछ बच्चे पढ़ाई के नाम पर फोन पर केवल कार्टून देखते रहते हैं या गेम खेलते हैं।

अंततोगत्वा, बात यह है कि कम-से-कम प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर, सक्षम परिवारों में भी, ऑनलाइन शिक्षा क्लासरूम पढ़ाई के मुकाबले फीकी पड़ जाती है। जब बच्चे की पारिवारिक पृष्ठभूमि कमज़ोर हो, तब ऑनलाइन शिक्षा मिथक है।

Date:16-09-21

कोरोना के मुआवजे में कई चुनौतियां

विराग गुप्ता , सुप्रीम कोर्ट के वकील और 'अनमास्किंग वीआईपी' पुस्तक के लेखक

आपदा प्रबंधन कानून 2005 के तहत बाढ़, सुनामी, सूखा, भूकंप, भूस्खलन और चक्रवात जैसी 12 आपदाओं से तबाही के मामलों में राहत कार्य व मुआवजे का कानून है। 2015 में गृह मंत्रालय ने इस कानून के तहत आपदा से मरने वालों के परिवारजनों को 4 लाख रुपए के मुआवजे का नियम बनाया था। सुप्रीम कोर्ट के सम्मुख याचिकाकर्ताओं ने दावा किया कि मार्च 2020 में कोरोना को आपदा के तौर पर नोटिफाई किया गया था। इसलिए इससे हुई मौत के सभी मामलों में 4 लाख का मुआवजा मिले। सरकार ने जवाब में कहा कि यह कानून प्राकृतिक व अन्य आपदाओं के लिए है, कोरोना का मामला अलग है। सरकार ने दावा किया कि कोरोना से निपटने में टीकाकरण, दवा, अस्पताल, नि:शुल्क राशन, अनाथ बच्चों का संरक्षण, प्रवासी श्रमिकों के कल्याण, ब्याज में राहत, प्रधानमंत्री ग्राम कल्याण पैकेज, फ्रंट लाइन वर्कर्स के लिए स्वास्थ्य बीमा जैसी मद पर बड़े पैमाने पर राहत कार्य किए गए हैं। इसलिए कोरोना से जुड़े मामलों में अलग से मुआवजा देने की कानूनी बाध्यता नहीं है।

दावों को खारिज करते हुए ढाई महीने पहले सुप्रीम कोर्ट ने केंद्र सरकार को दो आदेश दिए थे। पहला, कोरोना से हुई मौतों का विवरण मृत्यु प्रमाणपत्र में जरूरी तौर पर दर्ज करने की सरल प्रक्रिया बने। दूसरा, आपदा प्रबंधन कानून के तहत कोरोना से हुई मौतों के मामलों में पीड़ित परिवारों को मुआवजे के लिए दिशानिर्देश जारी किए जाएं। फैसले पर पूरी तरह से अमल न होने पर याचिकाकर्ता ने अवमानना की अर्जी लगाई, जिसे सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार नहीं किया। कोर्ट ने सरकार से कहा कि देश में तीसरी लहर की आहट है, इसलिए फैसले पर जल्द अमल हो। सरकारी शपथ पत्र से

असहमति जताते हुए कोर्ट ने कहा कि कोरोना से पीड़ित किसी व्यक्ति ने यदि आत्महत्या की है तो उन मामलों में भी मुआवजे पर विचार करना चाहिए।

संवैधानिक दृष्टि से तर्कसंगत होने के बावजूद, फैसले के अमल में 4 अड़चनें और चुनौतियां आ सकती हैं। पहला, सरकारी आंकड़ों के अनुसार कोरोना से करीब 4 लाख लोगों की मौत हुई। ऐसे सभी लोगों को मुआवजा देना पड़ा तो सरकार के ऊपर करीब 20 हजार करोड़ का वित्तीय बोझ पड़ सकता है। केंद्र ने मुआवजे के लिए राज्यों को दिशानिर्देश जारी भी किए तो इस मद पर रकम का जुगाड़ कौन करेगा? दूसरा, कोरोना काल में लाखों लोगों की मौत के बाद उनका अंतिम संस्कार भी हो चुका है। गरीब लोग जिन्हें सही मायने में मुआवजे की जरूरत है, वे गाइडलाइन्स की कानूनी बारीकियों के कारण शायद ही सही दावा पेश कर सकें। केंद्र व राज्य सरकारों के नए आदेश के बाद मुआवजा मिलने की उम्मीद पर मृत्यु प्रमाणपत्र में बदलाव का गोरखधंधा शुरू हो गया, तो भ्रष्टाचार बढ़ेगा। तीसरा, कोरोना को महामारी और आपदा के तौर पर नोटिफाई करने के कारण ही सरकार को लॉकडाउन व जनता कर्फ्यू लगाने की कानूनी ताकत मिली। लॉकडाउन में कई लोग भुखमरी व बेरोजगारी का शिकार होकर मौत का शिकार हो गए। आपदा कानून के तहत उन मृतक लोगों के परिजनों ने यदि मुआवजे की मांग की तो सरकार और सुप्रीम कोर्ट कैसे इनकार करेंगे? चौथा, अनेक राज्य सरकारों द्वारा कोरोना से हुई मौतों पर मुआवजा दिया जा रहा है। फ्रंटलाइन वर्कर्स की कोरोना से मौत होने पर 50 लाख रुपए के बीमा के लिए केंद्र सरकार ने योजना शुरू की है। सरकारी कर्मचारियों के परिजनों को अनुकंपा नियुक्ति भी मिल रही है। मुआवजे का लाभ सिर्फ वंचित वर्ग तक पहुचें , ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए सुप्रीम कोर्ट को न्यायिक आदेश पारित करने के साथ, राज्य सरकारों को भी प्रशासन चौकस करना होगा।

अनेक चुनौतियों के बावजूद फैसला कई लिहाज से मील का पत्थर साबित हो सकता है। पहला, किसी कानून के तहत अधिकार हासिल करने वाली सरकार को उस कानून के तहत जवाबदेही लेना भी जरूरी है। दूसरा, अकाल व प्लेग जैसी महामारियों से निपटने के लिए अंग्रेजों ने 1897 में जो कानून बनाया था, अब वह अप्रासंगिक हो गया है। नए जमाने की महामारियों से निपटने के लिए युक्तिसंगत कानून बनाने के लिए सरकार व संसद को पहल करनी चाहिए। तीसरा सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, जनता की सामाजिक सुरक्षा के लिए राज्य व केंद्र सरकार की जवाबदेही निर्धारित होना। इसके लिए जजों ने अनुच्छेद 21 में किए गए जीवन के अधिकार को संविधान की समवर्ती सूची के आइटम 23 से जोड़ा है। सुप्रीम कोर्ट का फैसला देश का कानून माना जाता है। इस लिहाज से यह फैसला, कल्याणकारी राज्य के स्वप्न को साकार करने की दिशा में ऐतिहासिक भूमिका निभा सकता है।

दैनिक जागरण

Date:16-09-21

आतंक पर अंकुश

संपादकीय

दिल्ली पुलिस की ओर से छह आतंकियों की गिरफ्तारी के बाद उनके और साथियों की तलाश में देश के विभिन्न हिस्सों में छापेमारी से यही पता चलता है कि उनका नेटवर्क कहीं अधिक फैला हुआ था। गिरफ्तार किए गए आतंकियों का मकसद त्योहारों के मौके पर भीड़ वाले स्थानों में विस्फोट करना और कुछ नेताओं को निशाना बनाना भी था। दिल्ली पुलिस के हाथ लगे आतंकियों के सभी साथियों की गिरफ्तारी जरूरी है, क्योंकि तभी उनके पूरे नेटवर्क को ध्वस्त करने और आतंकी हमलों के खतरे को कम करने में मदद मिलेगी। इन आतंकियों की गिरफ्तारी ने यह स्पष्ट कर दिया कि पुलिस और खुफिया एजेंसियों को सदा चौकस रहने की आवश्यकता है। यह आवश्यकता इसलिए और बढ़ गई है, क्योंकि अफगानिस्तान में तालिबान के कब्जे के बाद एक तो दुनिया भर में आतंकी तत्वों का दुस्साहस बढ़ा है और दूसरे पाकिस्तान भारत में नए सिरे से आतंकी हमलों की फिराक में दिख रहा है। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि दिल्ली पुलिस की ओर से पकड़े गए आतंकियों में से दो आतंकी प्रशिक्षण लेने पाकिस्तान गए थे। इन्हें खुद पाकिस्तानी सेना के जवानों ने विस्फोटक तैयार करने और हथियार चलाने का प्रशिक्षण दिया। ये आतंकी ओमान के रास्ते वहां पहुंचे थे।

यह भारत के लिए चिंता का विषय बनना चाहिए कि आतंकी अब अन्य रास्तों से भी पाकिस्तान पहुंच रहे हैं। एक समय वे सीमा पार कर वहां पहुंचते थे, फिर संयुक्त अरब अमीरात के रास्ते जाने लगे। अब लगता है कि उन्होंने ओमान का रास्ता पकड़ा है और इस काम में अंडरवर्ल्ड उनकी मदद कर रहा है। भारत को इस नतीजे पर पहुंचने में देर नहीं करनी चाहिए कि पाकिस्तान न केवल आतंकी तत्वों, बल्कि अंडरवर्ल्ड के गुर्गों को भी पनाह देने का काम पहले की तरह ही कर रहा है। यह ठीक है कि भारत ने पाकिस्तान की इन्हीं शैतानी हरकतों को देखते हुए संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद में यह कहने में संकोच नहीं किया कि यह देश संयुक्त राष्ट्र द्वारा घोषित आतंकियों के साथ अन्य आतंकवादियों का न केवल खुलकर समर्थन करता है, बल्कि उन्हें प्रशिक्षण, पैसा और हथियार भी देता है, लेकिन इससे पाकिस्तान की सेहत पर शायद ही कोई असर पड़े। वास्तव में वह तब तक सही रास्ते पर नहीं आने वाला, जब तक भारत उसे उसके किए की सजा देने के इरादे नए सिरे से जाहिर नहीं करता। चूंकि यह साफ है कि अफगानिस्तान में तालिबान के सत्ता में आ जाने के बाद पाकिस्तान का दुस्साहस और बढ़ेगा इसलिए भारत को कहीं अधिक सतर्क रहना होगा। सतर्कता का यह भाव हमारी पुलिस और सुरक्षा एजेंसियों के साथ समाज में भी नजर आना चाहिए।

Date:16-09-21

सुधारी जाए स्वास्थ्य बीमा की सेहत

डा. अजय खेमरिया , (लेखक लोक नीति विश्लेषक हैं)

आयुष्मान भारत योजना के ताजा आंकड़े बताते हैं कि 16.20 करोड़ भारतीय परिवारों को आयुष्मान बीमा कार्ड जारी किए गए है और अब तक दो करोड़ लोगों का इलाज इस योजना के तहत किया जा चुका है। सरकार ने 24,683 करोड़ रुपये की भारी-भरकम राशि गरीबों के इलाज पर इस मद में खर्च की है। करीब 60 करोड़ नागरिक इन बीमा कार्डों के जरिये बीमित हैं। नि:संदेह आयुष्मान एक बड़ा नीतिगत कदम है, लेकिन कोरोना संक्रमण जैसी आपदाओं ने जनस्वास्थ्य क्षेत्र में तमाम विसंगतियों को रेखांकित किया है। जन स्वास्थ्य बीमा भी एक ऐसा ही मसला है, जो मोदीकेयर (आयुष्मान) जैसी बड़ी योजना के बाद भी हमारे नीति निर्धारकों से विमर्श का आग्रह करता है। कोविड की बात करें तो आयुष्मान योजना के तहत 20.32 लाख नमूनों की जांच की गई और 7.08 लाख मरीज अस्पताल में भर्ती हुए, जबकि कुल संक्रमित मरीजों का आंकड़ा लगभग 3.5 करोड़ है और मौतों की संख्या 4.5 लाख। यानी महज दो फीसद कोरोना पीड़ितों के लिए आयुष्मान योजना में इलाज मिला। सवाल है कि देश के 23 हजार संबद्ध अस्पतालों वाली इस योजना के तहत कोरोना का इलाज समुचित संख्या में क्यों नही किया जा सका? इसके जवाब मुश्किल नहीं हैं। बुनियादी संकट सरकार की नीतियों में एकरूपता के अभाव का है।

भारत में जनस्वास्थ्य बीमा असल में भयंकर विसंगतियों से भरा मामला है। कोरोना के सबक के रूप में आज आवश्यकता है 'वन नेशन वन हेल्थ बीमा पालिसी।' सरकार को हर आदमी का बीमा कराने की अपनी जबाबदेही पूरी करनी होगी। मोदीकेयर जैसा बड़ा कदम उठाने वाली सरकार थोड़ा प्रयास कर प्रत्येक भारतीय को इंग्लैंड, अमेरिका, ब्राजील और अन्य विकसित देशों की तरह प्रामाणिक स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध करा सकती है। करीब 60 करोड़ नागरिक तो आयुष्मान योजना में कवर किए ही जा चुके हैं। वहीं 13 करोड़ लोग ईएसआइ के दायरे में हैं, जिसे बढ़ाकर 20 करोड़ किए जाने पर श्रम मंत्रलय आगे बढ़कर काम कर रहा है। केंद्र सरकार के कार्मिकों के लिए सीजीएचएस का प्रविधान है। राज्य सरकारें भी अपने कर्मचारियों के लिए कुछ न कुछ स्वास्थ्य बीमा का प्रविधान करती ही हैं। यहां आवश्यकता है सभी योजनाओं को एकीकृत करके लागू करने की। शेष आबादी जो इन योजनाओं के दायरे से बाहर है, के लिए भी कुछ किया जाए। इसमें देश का मध्यम एवं निम्न मध्यमवर्गीय तबका शामिल है। बेहतर होगा सरकार देश में अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा का कानून लेकर आए और एक ही योजना में सभी नागरिकों को शामिल किया जाए। जो सक्षम हैं, उनके लिए प्रीमियम का प्रविधान हो। आयुष्मान, ईएसआइ की तरह सभी केंद्रीय एवं राज्य सरकारों के कर्मचारियों को अनिवार्य बीमा उपलब्ध कराया जा सकता है। उनके वेतन से प्रीमियम की व्यवस्था भी आसान है। इसी तरह सभी निजी नियोजकों के लिए अपने कार्मिकों से राष्ट्रव्यापी एकीकृत बीमा का अनुपालन अनिवार्य किया जा सकता है।

आज से 20 साल पहले निजी क्षेत्र के लिए खोले जाने के बाबजूद स्वास्थ्य बीमा आम आदमी के लिए हितकर साबित नही हुआ। इसके मूल में एकरूपता का अभाव है। मसलन निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र की बीमा कंपनियों में प्रीमियम की समरूपता न होना। आयुष्मान 918 बीमारी पैकेज का प्रविधान करता है, मगर डेंगू, चिकनगुनिया और जापानी बुखार जैसी कई बीमारियों के लिए आयुष्मान कोई व्यवस्था नहीं करता। कैंसर जैसी बीमारी के लिए लोगों को अपनी हेल्थ पालिसी में कैंसर टाप अप कराने पड़ते हैं।

भारतीय बीमा क्षेत्र मरीज के अस्पताल में भर्ती होने यानी उसके गंभीर हालत पर ही प्रतिपूर्ति की प्रक्रिया आरंभ करता है। यदि कोई बीमित व्यक्ति ओपीडी में जाकर जांच या उपचार कराता है तो उसके लिए बीमा का कोई लाभ नहीं। भारत में 572 मेडिकल कालेज हैं, लेकिन निजी कालेज आयुष्मान, सीजीएचएस या ईएसआइ के बीमाधारकों का इलाज नहीं करते। इसकी वजह जांच, उपचार और सर्जरी की दरों में एकरूपता न होना है। उदाहरण के लिए अपेंडिक्स आपरेशन में ईएसआइ तीन हजार रुपये की व्यवस्था करता है, लेकिन निजी अस्पतालों में इसका खर्चा 10 हजार से अधिक आता है। वस्तुत:13 करोड़ लोगों के कवरेज वाले ईएसआइ के चंद अस्पतालों को छोड़कर कहीं भी एमआरआइ, डायलिसिस और सीटी स्कैन जैसी सुविधाएं नही हैं। स्पष्ट है कि भारतीय जन स्वास्थ्य बीमा समावेशी नहीं है और न ही प्रामाणिकता से काम कर पा रहा है।

सरकार ने आयुष्मान भारत पर बड़ी रकम खर्च की है, मगर उसमें विसंगतियां हैं। सबसे पहले ओपीडी और भर्ती के प्रविधान को समाप्त करना होगा। सार्वभौमिक बीमा की अवधारणा के अनुरूप सभी बीमारियों के इलाज को बीमा का हिस्सा बनाना होगा। ब्रिटिश नेशनल हेल्थ सर्विस में यही है। इससे बीमारियों को बार-बार अधिसूचित करने का झंझट नहीं रहेगा। साथ ही देश के हर स्वास्थ्य संस्थान को इसके अनिवार्य दायरे में लाना चाहिए ताकि बीमित व्यक्ति को बीमारी की स्थिति में उपचार के लिए अधिसूचित अस्पताल के लिए न भटकना पड़े।

सार्वभौम बीमा कवरेज के तहत उपचार की दरें व्यावहारिक और एक समान बनाई जानी चाहिए, जो एक नियत समय पर पुनरीक्षित भी होती रहें। बीमा को लक्ष्य केंद्रित बनाने के लिए सरकार को यह कदम भी उठाना चाहिए कि सभी मेडिकल कालेजों की पीजी सीट्स कालेज की जगह उस क्षेत्र की पीएचसी, सीएचसी या वेलनेस सेंटर से अटैच कर दी जाएं। उनके स्नातकोत्तर विद्यार्थी इन सेंटर्स पर काम करें और केवल थियरी के लिए कालेज जाएं। इससे ग्रामीण इलाकों में हर वक्त पेशेवर चिकित्सक उपलब्ध रहेंगे, जो मोदीकेयर जैसी पहल को परिणामोन्मुखी बनाने में सहायक होंगे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:16-09-21

सही निर्णय

संपादकीय

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने बुधवार को जो निर्णय लिए वे संकट से जूझ रहे भारतीय दूरसंचार क्षेत्र को पुनर्जीवित करने तथा उसकी प्रतिस्पर्धी प्रकृति को बरकरार रखने की दृष्टि से अत्यंत अहम हैं। हालांकि निजी क्षेत्र के नेतृत्व वाली दूरसंचार क्रांति ने देश की विकास गाथा को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका निभाई है लेकिन बीते दशक में उठाए गए कई नीतिगत और न्यायिक कदमों ने इसे भारी दबाव में ला दिया है। इनमें से कुछ को सुधारने के लिए केंद्रीय मंत्रिमंडल ने निर्णय लिए हैं और इस संदर्भ में सरकार के इरादे और निर्णय क्षमता की सराहना की जानी चाहिए।

केंद्रीय संचार मंत्री अश्विनी वैष्णव ने कहा कि मंत्रिमंडल ने 'नौ ढांचागत बदलाव और पांच प्रक्रियागत' सुधार किए हैं। इनमें एक बड़ा सुधार ऐसा है जिसकी चाह दूरसंचार कंपनियों को लंबे समय से थी। वह है 'समायोजित सकल राजस्व' अथवा एजीआर की परिभाषा को तर्कसंगत बनाना। एजीआर ही सरकार के प्रति कंपनियों के बकाये का आधार है। पहले एजीआर को हर प्रकार के राजस्व का आधार माना जाता था, बजाय कि कंपनी के मूलभूत दूरसंचार कारोबार से संबद्ध राजस्व के। सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि इस परिभाषा में समस्या है और इससे भविष्य में कंपनियों पर से वित्तीय बोझ कम करने में मदद मिलेगी। जैसा कि हालिया न्यायिक निर्णयों में कहा गया चूंकि यह अग्रगामी कदम है इसलिए कंपनियों पर कर्ज का भारी बोझ बना है। लेकिन अब वे नकदी प्रवाह का अपेक्षाकृत बेहतर प्रबंधन कर सकेंगी क्योंकि मंत्रिमंडल ने इस क्षेत्र की बकाया राशि पर चार वर्ष के ऋण स्थगन की इजाजत दी है, बशर्ते कि इस अवधि का तयशुदा ब्याज चुकाया जाए। मंत्रिमंडल ने स्पेक्ट्रम और लाइसेंस शुल्क से जुर्माने की व्यवस्था को हटाने की योजना को भी मंजूरी दी है। उसने भविष्य की दूरसंचार लीज को दीर्घावधि वाला और अधिक लचीला बनाने की योजना भी बनाई है। आखिर में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को 100 फीसदी तक बढ़ाकर वैश्विक पूंजी के दूरसंचार कंपनियों में आने की राह को और अधिक आसान बनाया गया है।

शेयर बाजार ने भी इस खबर को लेकर सकारात्मक प्रतिक्रिया दी है क्योंकि इससे दूरसंचार क्षेत्र की तीन में से दो कंपनियों को अधिक अनुकूल माहौल मिलेगा। इस बात का स्पष्ट आभास है कि सरकार ने इस अहम क्षेत्र को उबारने में अपनी भूमिका निभा दी है।

इस क्षेत्र पर सरकारी कंपनियों का जो बकाया है उसे लेकर जताई जा रही चिंताओं ने भी इस निर्णय में अहम भूमिका निभाई होगी। अगला कदम खुद कंपनियों को उठाना चाहिए। उन्हें अभी भी कर्ज के बोझ से निपटना है और उनकी नीति यही होनी चाहिए कि कर्ज चुकाते हुए एक स्थायित्व भरा कारोबारी मॉडल कैसे बनाया जाए।

बिना प्रति उपभोक्ता औसत राजस्व बढ़ाए ऐसा करना संभव नहीं है। कंपनियों को ज्यादा नकदी जुटानी होगी ताकि वे निवेश बढ़ा सकें और अपने कर्ज का प्रबंधन कर सकें। नियामक को चाहिए कि वह उद्योग जगत को प्रीपेड 4जी टैरिफ समेत ऐसे टैरिफ की ओर बढऩे के लिए प्रोत्साहित करे जो दीर्घावधि में स्थायित्व भरा साबित हो। वोडाफोन आइडिया को अतिरिक्त काम करना होगा क्योंकि उसके ऊपर काफी देनदारियां हैं। अब जबकि नीतिगत माहौल स्पष्ट है तो दीर्घावधि के निवेशकों से पूंजी जुटाना आसान होगा। आशा की जानी चाहिए कि सरकार के प्रयासों का नतीजा निकलेगा और यह क्षेत्र दो कंपनियों के वर्चस्व से उबर सकेगा। यह भी अहम है कि इस क्षेत्र में जरूरी पूंजी आए ताकि देश को डिजिटल भविष्य के लिए तैयार किया जा सके।

Date:16-09-21

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में निगमित सुसंचालन का प्रश्न

तमाल बंद्योपाध्याय, (लेखक बिज़नेस स्टैंडर्ड के सलाहकार संपादक एवं जन स्मॉल फाइनैंस बैंक के वरिष्ठ परामर्शदाता हैं)

पिछले हफ्ते शांति लाल जैन ने इंडियन बैंक के प्रबंध निदेशक (एमडी) एवं मुख्य कार्याधिकारी (सीईओ) का पदभार संभाला। कुछ ही दिन पहले मंत्रिमंडल की नियुक्ति समिति ने तीन सार्वजनिक बैंकों के एमडी एवं सीईओ का कार्यकाल बढ़ा दिया था। सात सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों (पीएसबी) के 10 कार्यकारी निदेशकों का कार्यकाल भी बढ़ा दिया गया। अब पुरानी बात हो गई जब सरकार ऐसी नियुक्तियों की घोषणा में वक्त लेती थी। बहुत समय नहीं हुआ, जब बैंक ऑफ बड़ौदा के एमडी एवं सीईओ के पद से पी एस जयकुमार के हटने के 100 दिन बाद संजीव चड्ढा ने पदभार संभाला। यह भी भारत में पहली बार दो सरकारी बैंकों के बैंक ऑफ बड़ौदा में विलय की प्रक्रिया चलने के दौरान हुआ।

हम आन्ध्रा बैंक (अब यूनियन बैंक ऑफ इंडिया) के साथ घटित वाकये पर नजर डालें। दिसंबर 2017 में सुरेश पटेल का कार्यकाल खत्म हो गया था लेकिन उनका उत्तराधिकारी तलाशने में 264 दिन लग गए। देना बैंक (बैंक ऑफ बड़ौदा में विलय) और पंजाब ऐंड सिंध बैंक की हालत थोड़ी बेहतर थी। इन दोनों बैंकों को कर्णम शेखर और एस हरिशंकर के रूप में नए मुखिया 262 दिन बाद मिले थे। क्या पीएसबी में चीजें क्या वाकई में बदल रही हैं? जवाब हां और ना दोनों ही हैं।

मामला सिर्फ एमडी एवं कार्यकारी निदेशकों का कार्यकाल बढऩे और समय पर नई नियुक्ति का ही नहीं है। बैंक ऑफ बड़ौदा के सिवाय 11 पीएसबी में से किसी के भी पास अपना चेयरमैन नहीं है, चाहे वह गैर-कार्यकारी ही क्यों न हो। कई बैंकों के विलय के बाद पीएसबी की संख्या 27 से कम होकर अब 12 पर आ चुकी है। इनमें से 11 राष्ट्रीयकृत बैंक हैं और एकदम अलग नियम से संचालित भारतीय स्टेट बैंक (एसबीआई) के पास एक कार्यकारी चेयरमैन है। अधिकांश राष्ट्रीयकृत बैंकों के बोर्ड में तो समुचित निदेशक भी नहीं हैं। अधिनियम के तहत सरकारी स्वामित्व वाले हरेक बैंक में पूर्णकालिक निदेशक होने चाहिए जिनकी नियुक्ति केंद्र सरकार भारतीय रिजर्व बैंक की सलाह से करे। बैंकों के बोर्ड में एक निदेशक केंद्र सरकार की तरफ से भी नामित होना चाहिए जबकि वाणिज्यिक बैंकों के नियमन एवं निगरानी में महारत रखने वाले एक जानकार को आरबीआई निदेशक बनाए। कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यवस्था, बैंकिंग, सहकारिता, अर्थशास्त्र, वित्त, कानून, लघु उद्योग के जानकार के अलावा एक चार्टर्ड अकाउंटेंट को भी निदेशक बनाने का प्रावधान है।

बाजार नियामक सेबी के पूर्व चेयरमैन एम दामोदरन ने हाल ही में अपने एक लेख में कहा कि ऐसी तकरीबन 60 जगहें महीनों से रिक्त पड़ी हुई थीं। शेयरधारकों के अलावा कर्मचारियों एवं अधिकारियों के प्रतिनिधियों को भी बैंकों के बोर्ड में जगह दिए जाने की अपेक्षा होती है। फिलहाल किसी भी पीएसबी के बोर्ड में कर्मचारियों या अधिकारियों का प्रतिनिधि नहीं है। जहां पूर्णकालिक निदेशक बैंक संचालित करते हैं, वहीं स्वतंत्र निदेशक रणनीतियां बनाने एवं बैंकों का समुचित कामकाज सुनिश्चित करते हैं। स्वतंत्र निदेशक नहीं होने से कई पीएसबी बोर्ड की उप-समितियों की बैठकों का कोरम भी नहीं पूरा हो पा रहा है। यह सवाल सरकार की प्राथमिकता में क्यों नहीं है? इसकी वजह कहीं निजीकरण की पहल तो नहीं है? लेकिन सरकार की योजना तो दो बैंकों के निजीकरण की है, सभी पीएसबी की नहीं। ऐसे में यही कहा जा सकता

है कि वे एकीकरण प्रक्रिया से अछूते रहे छह पीएसबी बैंक ऑफ इंडिया, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, ओवरसीज बैंक, यूको बैंक, बैंक ऑफ महाराष्ट्र और पंजाब ऐंड सिंध बैंक से ही चुने जाएंगे।तमाम चर्चाओं के बावजूद बैंकों का निजीकरण इस वित्त वर्ष में हो पाने की संभावना कम है। फिर इन पदों को खाली क्यों रखा जा रहा है? क्या निजीकरण के पहले इन बैंकों में कॉर्पोरेट गवर्नेंस पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए? सरकारी बैंकों के प्रमुखों के कार्यकाल पर भी ध्यान देने की जरूरत है। जब किसी निजी बैंक का सीईओ 70 साल की उम्र तक पद पर रह सकता है तो किसी सार्वजनिक बैंक के प्रमुख को 60 साल की उम्र में ही क्यों सेवामुक्त हो जाना चाहिए? भारतीय स्टेट बैंक ही इसका अपवाद है। क्या अन्य सार्वजनिक बैंकों के लिए भी यह प्रावधान नहीं किया जाना चाहिए? आखिरी सवाल पीएसबी प्रमुख को बाजार के हिसाब से वेतन देने से जुड़ा हुआ है। एक पीएसबी के गैर-कार्यकारी चेयरमैन की वार्षिक आय अधिकतम 10 लाख रुपये हो सकती है। यह किसी निजी बैंक के चेयरमैन को मिलने वाले वेतन से बहुत कम है। निजी और सार्वजनिक बैंक के एमडी एवं सीईओ के वेतन में मौजूद फर्क तो बहुत ज्यादा है।

सार्वजनिक बैंकों के शीर्ष अधिकारियों के पारिश्रमिक में सुधार की कोशिशों का कोई नतीजा नहीं निकला है। एक दशक पहले जून 2010 में वित्त मंत्रालय ने सार्वजनिक बैंकों के मानव संसाधन मसलों पर एक समिति गठित की थी जिसने प्रदर्शन सुधारने और क्षमता निर्माण संबंधी कई सिफारिशें की थीं। सरकार ने इनमें से 56 अनुशंसाएं स्वीकार की जबकि अहम सुझावों को दरकिनार कर दिया। आज भी इन बैंकों के एमडी एवं सीईओ का वेतन अफसरशाहों के वेतन ढांचे से जुड़ा हुआ है। आखिर वित्त मंत्रालय के अफसर बैंकरों को खुद से ज्यादा वेतन पाते हुए देखना कैसे पसंद करेंगे? प्रबंध संस्थानों से प्रतिभावान युवाओं की सीधी भर्ती न कर पाने, जांच एजेंसियों की धमक और एल-1 फॉर्मूले से भी पीएसबी के प्रदर्शन पर असर पड़ता है। इसमें सुधार की शुरुआत शीर्ष बैंकरों को बढिय़ा वेतन देकर की जा सकती है। उन्हें बाजार के हिसाब से वेतन दीजिए, जवाबदेह बनाइए और प्रदर्शन न कर पाने पर दंड भी दीजिए। एकीकरण की मुहिम ने बैंकों की संख्या भले ही कम कर दी हो, बैंकिंग जगत में सरकार का स्वामित्व नहीं घटा है। सरकार को यह अहसास हो चुका है कि उसे बैंकिंग कारोबार में बड़े स्तर पर नहीं रहना चाहिए। फिर उसका ध्यान बैंकों के अच्छे संचालन पर होना चाहिए।

राष्ट्रीय सहारा

Date:16-09-21

पिछड़ी जातियां क्यों कर रही हैं मांग ?

बलिराम सिंह

दस अप्रैल, 2008 को अपने फैसले में उच्चतम न्यायालय ने उच्च शिक्षण संस्थानों में अन्य पिछड़े वर्गों के लिए 27 प्रतिशत आरक्षण को वैध ठहराया लेकिन संपन्न लोगों यानी 'क्रीमी लेयर' को इस दायरे से बाहर रखा अर्थात सवर्ण वर्ग, जो अक्सर कहता है कि आरक्षण का लाभ पिछड़ी जातियों के संपन्न लोग ले रहे हैं, को मालूम होना चाहिए कि ओबीसी के लिए जो आरक्षण मिल रहा है, वह सामाजिक, शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्ग को मिलता है, जो आर्थिक रूप से भी

संपन्न न हो। गौरतलब है कि ढेरों आंदोलन के बाद 1993 में ओबीसी के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण और 2008 में उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण का प्रावधान किया गया।

मंडल आयोग की सिर्फ दो सिफारिशों पर अमल किया गया। बाकी की सिफारिशें अभी भी धूल खा रही हैं, या कुछ राज्यों ने अपनी तरफ से आंशिक रूप से उन पर अमल किया है। आरक्षण का कुल मकसद यह रहा है कि जिन जातियों, समुदायों, कार्यसमूहों को सदियों से उसके जातीय खांचे में बांधकर उनके काम आरक्षित कर दिए गए, उन्हें भी सामान्य नागरिक के रूप में जीने, प्रशासन में उचित हिस्सेदारी, शिक्षा में उचित हिस्सेदारी मिल सके। मंडल कमीशन की सिफारिश लागू हुए 28 साल पूरे होने वाले हैं, लेकिन इस दौरान पिछड़ा वर्ग अपनी मेहनत एवं कौशल से सफलता की ओर निरंतर अग्रसर है। अब चाहे सिविल सेवा का एक्जाम हो या मेडिकल अथवा इंजीनियरिंग का, हर एक्जाम में टॉपर के तौर पर ओबीसी के छात्र कीर्तिमान रच रहे हैं। सवाल उठता है कि वर्तमान में पिछड़ी जातियां एवं पिछड़ों की राजनीति करने वाली पार्टियां जातीय जनगणना कराने की मांग पर क्यों अड़ी हैं?

बदलते समय के साथ ही पिछड़ी जातियां अपने अधिकारों को लेकर काफी जागरूक होती जा रही हैं। इस समाज से आने वाले प्रबुद्ध वर्ग एवं सामाजिक संगठन अपने नेताओं पर दबाव डाल रहे हैं। तीन साल पहले आई पुस्तक 'मंडल कमीशन, राष्ट्र निर्माण की सबसे बड़ी पहल' के अनुसार 1993 से ओबीसी आरक्षण लागू है, लेकिन केंद्रीय मंत्रालयों में महज 5.40 प्रतिशत ओबीसी अधिकारी हैं। आंकड़े चीख-चीखकर कह रहे हैं कि संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद ओबीसी तबका उन पदों पर नहीं पहुंचा पाया जहां से नीति नियंत्रण होता है, या बौद्धिक कसरत होती है।

पुस्तक के अनुसार, ओबीसी आरक्षण लागू होने के बाद तो सरकारी नौकरियों व विद्यालयों का खात्मा ही शुरू कर दिया गया। 1992-93 में जब भारत की आबादी 83.9 करोड़ थी तो सरकारी नौकरियों की संख्या 1.95 करोड़ थी यानी हर 43 आदमी में से एक व्यक्ति सरकारी नौकरी करता था। सरकारों ने इसे बढ़ाने की बजाय घटा दिया। 2017 में भारत की आबादी करीब 130 करोड़ है, जबकि सरकारी नौकरियों की संख्या घटकर 1.76 करोड़ रह गई है यानी इस समय 74 व्यक्ति में से एक आदमी सरकारी नौकरी पर निर्भर है।

हाल के दिनों में केंद्र सरकार ने लैट्रल एंट्री के जरिए संयुक्त सचिव की नियुक्ति शुरू की है। इस पहल को लेकर पिछड़ा वर्ग एवं दलित समाज आरक्षण को लेकर सशंकित हैं। उच्च शिक्षण संस्थानों में नियुक्ति का मामला हो या विश्वविद्यालयों में एड़हॉक पर होने वाली भर्तियां हों। इनमें नियुक्ति के बावजूद ओबीसी लेक्चरर को महीने में काफी कम क्लास मिलती हैं। पिछले साल सिविल सर्विस एक्जाम के रिजल्ट में ओबीसी के सफल अभ्यार्थियों ने गरीब सवर्ण अभ्यर्थियों से ज्यादा अंक लाकर सफलता हासिल की। इसके अलावा अन्य कई नौकरियों में ओबीसी अभ्यर्थियों का कटऑफ मार्क्स जनरल से ज्यादा आ रहा है। बावजूद इसके ओबीसी अभ्यर्थियों का चयन जनरल के तहत न करके उनके मूल कोटे में किया जा रहा है।

इसके अलावा, उत्तर प्रदेश में 69 हजार सहायक शिक्षकों के भर्ती मामले में भी राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग ने उत्तर प्रदेश की भाजपा सरकार को नोटिस जारी किया है। इन सभी मुद्दों को बीजेपी की सहयोगी पार्टी अपना दल एस की राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं केंद्रीय मंत्री अनुप्रिया पटेल संसद में कई बार उठा चुकी हैं। इन सभी परिस्थितियों की वजह से पिछड़ी जातियां जातीय जनगणना के लिए निरंतर आवाज उठा रही हैं। देश में 1931 के बाद अब तक जातीय जनगणना नहीं हुई। पिछड़ी जातियों के प्रबुद्ध वर्ग एवं सामाजिक संगठनों का मानना है कि जातीय जनगणना कराने से सही मायने में

मालूम होगा कि किस जाति की कितनी आबादी है, और उसकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति कैसी है ! जातीय जनगणना से पिछड़ी जातियों के विकास के लिए विशेष योजनाओं का खाका तैयार हो सकेगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:16-09-21

फिर चेहरा बदल रहा आतंक

सुशांत सरीन, सीनियर फेलो, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन

दिल्ली, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र में दबिश डालते हुए दिल्ली पुलिस की स्पेशल सेल ने छह आतंकियों को धर दबोचा है। दावा है कि ये सभी त्योहारी मौसम में देश को अशांत करने की योजना बना रहे थे। इनकी गिरफ्तारी उन आशंकाओं को पुष्ट करती है, जो अफगानिस्तान में तालिबानी राज के शुरू होने के साथ जाहिर की गई थीं। काबुल में तख्तापलट के बाद यही कहा गया था कि इस पूरे खित्ते में अब आतंकवाद में बढ़ोतरी होगी और दहशतगर्दों को शह मिलेगी। कयास यह भी है कि चूंकि पाकिस्तान ने दो दशकीय जंग में दुनिया के सबसे ताकतवर देश अमेरिका व उसके मित्र राष्ट्रों की फौज को शिकस्त दी है, और यह जीत भी ऐसी कि हार के बावजूद इस्लामाबाद के प्रति वाशिंगटन का रवैया नरम है, इसलिए विशेषकर भारत के खिलाफ पाकिस्तान पोषित आतंकी जमातों का इस्तेमाल कहीं अधिक होगा। इन गिरफ्तारियों के बाद ये आशंकाएं सच प्रतीत होने लगी हैं।

अच्छी बात यह है कि हमारी सुरक्षा एजेंसियां तत्पर हैं और देश विरोधी षड्यंत्रों को सफलतापूर्वक बेनकाब कर रही हैं। मगर मसला यह है कि अगर एक बार भी इन आतंकियों के नापाक मनसूबे कामयाब हो गए, तो हमारी सुरक्षा व्यवस्था कठघरे में आ जाएगी। पिछले कुछ दिनों से ऐसी कोशिशें हो भी रही हैं। मसलन, हाल के दिनों में कश्मीर में आतंकी वारदातों में एक तरह की बढ़त दिख रही है। खबर यह भी है कि उत्तरी कश्मीर में, जहां हालात काफी हद तक ठीक रहते हैं, दहशतगर्दों की सीमा पार से घुसपैठ हुई है। पिछले एक महीने से वहां एनकाउंटर में इजाफा हुआ है। सरहद पार के आतंकी शिविरों में भी हलचल तेज है। जाहिर है, पाकिस्तान के भीतर जश्न का माहौल है। 1992 में जब अफगानिस्तान में डॉक्टर नजीबुल्लाह की सरकार को मुजाहिदीन ने पलट दिया था, तब भी पाकिस्तान में इसी तरह की खुशियां मनाई जा रही थीं। उल्लेखनीय है कि उसी दौर में कश्मीर की सुकून भरी वादियों में सीमा पार से आतंकवाद की धुंध पसरनी शुरू हुई थी। आज फिर से हमारे लिए वही खतरा सिर उठा रहा है।

मंगलवार को पकडे गए आतंकियों के बारे में कहा गया है कि दाऊद इब्राहिम के भाई के साथ उनके तार जुड़े हुए हैं और डी-कंपनी के नेटवर्क का इस्तेमाल हो रहा था। इसमें सीधे-सीधे पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई का नाम नहीं लिया गया। क्या ये आतंकी बिना आईएसआई की मदद से इतनी बड़ी हिमाकत कर सकते हैं? अफगानिस्तान में हुकूमत बदलने के बाद यह कहा भी गया था कि यह मुल्क अब दहशतगर्दी का अड्डा बनेगा। छोटे-बड़े तमाम दहशतगर्दों की अफगानिस्तान की ओर रवानगी इसकी तस्दीक भी कर रही थी। चूंकि इन आतंकियों को पाकिस्तान की शह हासिल है,

इसलिए भारत में होने वाली ऐसी किसी घटना में हमें 'नॉन-स्टेट एक्टर्स' के शामिल होने जैसे दावों पर यकीन नहीं करना चाहिए, बल्कि सीधे-सीधे पाकिस्तानी हुकूमत और उसकी एजेंसियों को घेरना चाहिए।

हमें यह स्वीकार करना होगा, और संभवत: हमारी खुफिया एजेंसियां इसे मानने भी लगी हैं कि आतंकवाद का चरित्र अब बदल रहा है। तकनीक और तरीकों ने इसका रूप काफी हद तक खौफनाक बना दिया है। अब ड्रोन जैसी नई प्रौद्योगिकी की भी इसमें आमद हो गई है, और कई देशों में अत्याधुनिक तकनीक से आतंकी हमलों को अंजाम दिया गया है। भारत भी इन सबसे नहीं बच सकता। खतरा यह है कि तालिबान आत्मघाती दस्ता तैयार करने की बात खुलेआम स्वीकारता है। यानी, हमारे यहां देर-सवेर ऐसे हमले होंगे ही। नई प्रकार की आईईडी का इस्तेमाल भी होगा। लिहाजा, हमें पहले से अपनी तैयारी चाक-चौबंद करनी होगी।

एक अन्य पहलू यह भी है कि बम बनाने की तकनीक जिस तरह से उन्नत होती जा रही है, उसको रोकने के लिए हमें विशेष नजर रखनी होगी। हमें न सिर्फ इन सबको बेनकाब करना होगा, बल्कि इनकी तह तक भी पहुंचना होगा। घाटी में फिलहाल जैसी सुरक्षा व्यवस्था है, वह 1990 के दौर के हिसाब से काफी बेहतर है, लेकिन जब हम अपनी सुरक्षा व्यवस्था को उन्नत बनाने की बात करते हैं, तब हमारे लिए यह देखना जरूरी है कि सुरक्षा बलों के पास पारंपरिक हमलों के खिलाफ ही सुरक्षा कवच न हो, बल्कि नए तकनीकी हमलों के खिलाफ भी वे बखूबी मोर्चा ले सकें।

नए खतरों से बचने के लिए देश में नई तकनीक की आमद, नए तरह के प्रशिक्षण, नई प्रौद्योगिकी पर विश्वास और नए निवेश की दरकार है। इन सबकी पूर्ति जल्द से जल्द होनी चाहिए। खतरा पैदा होने के बाद उसका मुकाबला करने से बेहतर है कि खतरे को पैदा होने से रोक दिया जाए और वक्त से पहले उसे खत्म कर दिया जाए। यही रणनीति हमें अब अपनानी चाहिए।

एक बड़ा खतरा आतंकियों के स्लीपर सेल से भी है। इस तरह के मॉड्यूल में आतंकियों को तमाम तरह के प्रशिक्षण देकर आम लोगों के बीच भेज दिया जाता है, जहां वे कुछ वक्त तक बिल्कुल आम जनजीवन बिताते हैं। चूंकि दहशतगर्द समाज में घुल-मिल जाते हैं, इसलिए उन पर कोई शक नहीं करता और सुरक्षा एजेंसियों के रडार पर भी वे नहीं आते। और, जब आतंकी संगठन को उनकी जरूरत होती है, तब वे तुरंत उपलब्ध हो जाते हैं। इसलिए इनसे पार पाने के लिए हमें अपनी आंख और कान खुले रखने होंगे। स्थानीय पुलिस और खुफिया एजेंसियों को इस तरह का प्रशिक्षण देना होगा कि कुछ भी असामान्य दिखने पर वे तुरंत सावधान हो जाएं। रेहड़ी-पटरी पर रहने वाले लोग भी इसमें खासा मददगार हो सकते हैं। उन्हें इस कार्य में ज्यादा से ज्यादा जोड़ना चाहिए। अब 26/11 या 9/11 जैसी वारदातें शायद ही होंगी। बिल्कुल नए तरह के आतंकी हमलों के हम गवाह बन सकते हैं। लिहाजा, हमें इतनी तैयारी रखनी ही होगी कि हमारी सुरक्षा व्यवस्था में कतई सेंध न लगने पाए। हमारी सुरक्षा एजेंसियों को इसी दिशा में काम करना होगा।